SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

अनुराग कुमार, शोधार्थी, हिंदी साहित्य विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, तेलंगाना, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
अनुराग कुमार, शोधार्थी, हिंदी साहित्य विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, तेलंगाना, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 30/09/2022
Revised on : -----
Accepted on : 07/10/2022
Plagiarism : 02% on 30/09/2022

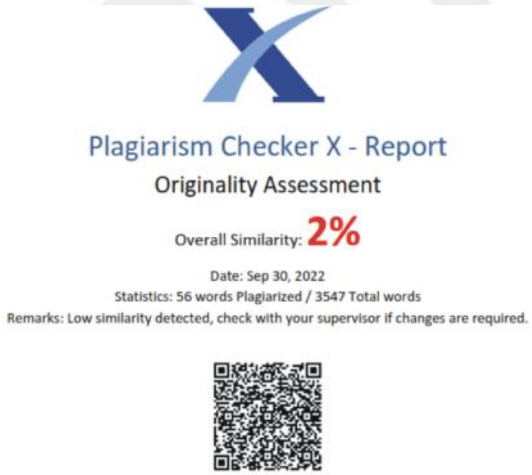

शोध सार

इक्कीसवीं सदी के बदलते संदर्भों में कहानी को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी देखना आवश्यक है। नई सदी में तेजी के साथ परिवर्तित हुए सामाजिक बदलावों और उसकी प्रक्रिया को हिंदी कहानी कितना और किस सीमा तक अभिव्यक्त कर पायी है यह कहानी के समाजशास्त्रीय अध्ययन के द्वारा ही स्पष्ट हो पाता है। इस सदी की कहानियां अपनी रचना प्रक्रिया में समाज के केंद्र से लेकर हाशिए तक के सभी पक्षों की उपस्थिति साफ तौर पर देखी जा सकती है जिसके विश्लेषण के लिए कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन महत्वपूर्ण उपकरण उपलब्ध कराता है।

मुख्य शब्द

समाजशास्त्रीय, सामाजिक, इक्कीसवीं सदी, भूमंडलीकरण, मूल्य, रचना प्रक्रिया.

प्रस्तावना

भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में इक्कीसवीं सदी पूर्ण रूप से बाज़ार, सूचना प्रौद्योगिकी, तकनीक और पश्चिमीकरण के पूर्ण प्रभाव की सदी रही है, जिसका प्रभाव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगत होता है। भारतीय सामाजिक संरचना बड़े हिस्से से लेकर सबसे छोटी इकाई मनुष्य तक इसके व्यापक प्रभाव हुए हैं जिनको साहित्य ने बारीकी से देखा, जाना और समझा है। कहा जाता है कि समाज साहित्य को प्रभावित करता है इसीलिए साहित्य सामाजिक परिवर्तन का एक जीवंत दस्तावेज माना जाता है। इक्कीसवीं सदी में समाज के सभी स्तरों पर जो तीव्रता से बदलाव आया है उसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। साहित्य का समाजशास्त्र से एक घनिष्ठ संबंध रहा है जिसका मूल कारण दोनों के मूल में या केंद्र में मनुष्य का होना है। समाजशास्त्र का कार्यक्षेत्र समाज और उसके सभी अंग हैं

और समाज का निर्माण मनुष्यों से होता है इसी कारण समाजशास्त्र साहित्य से जुड़ जाता है, तो वहीं दूसरी ओर साहित्य भी सामाजिक संदर्भों से ही जुड़कर अपना संवेदनात्मक आकार पाता है। किसी भी साहित्यिक रचना के अस्तित्व में आने के पीछे भी यही सामाजिक कारण विद्यमान होते हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत सामाजिक घटकों, तत्वों, वस्तुओं, परिस्थितियों आदि का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाता है और उनका विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। साहित्य में भी इन समाजशास्त्रीय अध्ययन की पद्धति का प्रयोग करके किसी रचना का व्यापक विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाता है। बात अगर हिंदी कहानी की जाए तो हिंदी कहानियों के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत कहानी के अंर्तभूत तत्वों और उसके निर्माण के पीछे की सामाजिक प्रक्रिया, उसकी सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना का विवेचन और मूल्यांकन किया जाता है। रमेश उपाध्याय इस संबंध में अपनी पुस्तक 'कहानी की समाजशास्त्रीय समीक्षा' में लिखते हैं, "साहित्यिक अध्येता द्वारा किए जाने वाले साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रकृति मूलतः समीक्षात्मक और मूल्यांकनपरक होती है। उसका प्रयोजन समाज की विकास प्रक्रिया में साहित्य की विकास प्रक्रिया का अध्ययन करना होता है, जिससे वह साहित्य में समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों, साहित्यिक आंदोलनों तथा प्रवृत्तियों, साहित्य में प्रचलित परंपराओं तथा उत्पन्न नवीनताओं के कारणों को समझ सके और समकालीन समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं तथा दार्शनिक दृष्टियों, कला सिद्धांतों एवं सौंदर्याभिरुचियों के आलोक में साहित्यिक कृतियों, परंपराओं, आंदोलनों तथा प्रवृत्तियों की समीक्षा और मूल्यांकन कर सके।"[1] कह सकते हैं कि किसी कृति का समाजशास्त्रीय अध्ययन कृति के मूल्यांकन का और उसकी सामाजिक प्रदेयता को जांचने, आंकने की एक उत्कृष्ट माध्यम और प्रभावी पद्धति है। इक्कीसवीं सदी का कहानी लेखन आधुनिकता के तत्वों से लैस है जिसमें वैज्ञानिकता, तार्किकता, समसामयिकता के साथ ही साथ युगीन भाव बोध का भी विस्तृत परिचय दृष्टिगत होता है, जिस कारण से कहानी के विषय में नवीनता के साथ–साथ वैविध्य भी देखने को मिलता है। इस सदी के कहानीकारों ने कहानी–लेखन में मनुष्य जीवन और समाज के सभी रंगों को बड़ी भावात्मकता और कलात्मकता के साथ उकेरा है। एक ओर जहां इस समय की कहानियों में वृद्ध समाज की पीड़ा है, तो कहीं नारी मुक्ति की छटपटाहट भी है, कहीं किसी परिवार के आपसी संबंधों की समस्या है, तो दूसरी ओर अकेले होते आधुनिक जीवन का खोखलापन भी है। यह सभी प्रवृत्तियां सदी के इस दूसरे दशक में अधिक प्रभावी और व्यापकरूप से उभर कर सामने आती हैं। सदी के पहले दशक में जहां समाज में पिछली सदी के रूढ़ हो चुके तमाम मूल्य, परंपराओं, रीति–रिवाजों और नए के मध्य एक प्रकार के तनाव की स्थिति दिखलाई पड़ती है, पुराना छोडकर नए को ग्रहण करने के लिए एक संकोच का भाव दिखता है। यह स्थिति दूसरे दशक में अधिक स्पष्ट हो जाती है, यहां ग्राह्यता और अग्राह्यता के मध्य संकोच की स्थिति नहीं देखने को मिलती, एक प्रकार की स्पष्टता, मुखरता का भाव यहां नज़र आता है। नई कहानी आंदोलन के वक्त कमलेश्वर अपनी पुस्तक नयी कहानी की भूमिका में लिखते हैंः "जो कुछ बदल गया या बदल रहा था, उसके प्रति हमारे तत्कालीन लेखकों की भंगिमा में एक तरह का कडुवा व्यंग्य था। उनके लिए जीवन का प्रत्येक नया पहलू जिज्ञासा का विषय न होकर हिकारत का कारण बन गया था। जिंदगी में आया हुआ परिवर्तन उन्हें रुच नहीं रहा था और वो उसकी ओर प्रश्नवाचक मुद्रा में नहीं बल्कि नकार के मुद्रा में खड़े थे।"[2]

इक्कीसवीं सदी में मनुष्य के जीवन के तमाम अंतर्विरोध इस समय की हिंदी कहानियों का केंद्रीय विषय रहे हैं जिनमें वर्ग–जातिगत अंतर्विरोध, मध्यवर्गीय संस्कृति के अंतर्विरोध, ग्रामीण–शहरी जीवन के मध्य अंतर्विरोध, शिक्षित–नौकरीपेशा जीवन के अंतर्विरोध, दो पीढ़ियों के मध्य वैचारिक अंतर्विरोध, प्रेम–सहजीवन के अंतर्विरोध, धार्मिक कट्टरता आदि विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। इस समय के प्रमुख कहानीकारों में प्रभात रंजन, राकेश मिश्र, शशिभूषण द्विवेदी, विमलचंद्र पांडे, उमाशंकर चौधरी, अजय नावरिया, कैलाश वनवासी, पंकज मित्र, आकांक्षा पारे, मनीषा कुलश्रेष्ठ, शरद सिंह, वंदना राग, अल्पना मिश्र, पंकज सुबीर, रवि बुले, प्रत्यक्षा, कविता, जयश्री राय, हुस्न तबस्सुम निहां, संजय कुंदन, नीलाक्षी सिंह, गीताश्री, योगिता यादव, प्रियदर्शन, मनोज कुमार पांडे, मनोज रूपड़ा, क्षमा शर्मा, तरुण भटनागर आदि हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'ब्लैक होल्स' नयी–पुरानी पीढ़ी के मध्य आए 'जैनरेशन गैप' की विकट स्थितियों का चित्रण करती है, पुरानी पीढ़ी के द्वारा नए जीवन मूल्यों को आसानी

से स्वीकार न कर पाने के मध्य नयी पीढ़ी गतिविधियों और भावनाओं को आंकने का उपक्रम इस कहानी के मध्यम से किया गया है। कहानी के अंत में एक पिता का पश्चाताप, नए–पुराने के सामंजस्य के रूप में समाधान का विकल्प भी प्रस्तुत करता है। पंकज सुबीर की 'चौपड़ें की चुड़ैलें' अपने सामाजिक संदर्भों में जहाँ एक ओर ग्रामीण बेसहारा हुई स्त्रियों के जीवन–यापन करने के लिए किए गए उपक्रमों की विवशता को रेखांकित करती है तो दूसरी तरफ यह कहानी सूचना–तकनीक के नए यथार्थ से निर्मित हो रही कथा–संवेदना को उभारती है। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक तक जब गांव–गांव में सूचना और संचार क्रांति के साधन उपलब्ध हो गए हैं तो ऐसे समय में इसके जटिल यथार्थ को आकांक्षा पारे की कहानी 'शिफ्ट+कंट्रोल+आल्ट=डिलीट' बड़ी बारीकी से व्याख्यायित करती है, जिसमें मानवीय संवेदनाओं के स्तर पर इस तीव्रगामी तकनीक के कितने घातक परिणाम हो सकते हैं, यह दिखाने का प्रयास किया गया है। मोहम्मद आरिफ ने कहानी 'चोर–सिपाही' में सांप्रदायिक दंगों और उनके पीछे के राजनीतिक कुचक्रों को नवीन कथा रचना के माध्यम से उकेरा है। इस समय की कहानियों की एक अन्य विशेषता उसमें समाज के प्रत्येक हिस्से के यथार्थ का सूक्ष्मांकन है, चाहे वह हिस्सा स्त्री हों, दलित वर्ग हों, सड़क किनारे रहने वाले बेघर मजदूर वर्ग हों, देहाड़ी कामगार हों आदि के जीवन का यथार्थ मूल्यांकन और उनकी बेहतर स्थिति के लिए प्रतिरोध की अनुगूंज कहानियों में यत्र–तत्र सुनाई पड़ती है। आज का कहानीकार जिस समाज में रह रहा है उसके यथार्थ का अनुभव वह अनेक रूपों में कर रहा है और उस यथार्थ को वह अपने अनुभव से विशिष्ट बोध बनाकर कहानी में प्रस्तुत करता है। नीलाक्षी सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, अजय नावरिया, कैलाश वनवासी, पंकज सुबीर, हुस्न तबस्सुम आदि की कहानियों में इस वर्ग के जीवन का यथार्थ अपनी जटिलताओं के साथ उभरकर सामने आता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'किरदार' कहानी 'मधुरा' नायिका के रूप में स्त्री मन के भीतर की उथल–पुथल, अंर्तद्वंद्व को बड़ी बारीकी के साथ उकेरती हैं। 'मधुरा' की आत्महत्या इस कठोर, प्रेम के अभाव की दुनिया से स्वयं को अलग कर लेने का एक खामोश विद्रोह का सूचक बन जाती है। युवा कहानीकार अनुज की कहानी 'अंगूरी में डंसले बिया नगीनिया' जहाँ एक ओर समाज में व्याप्त जातीय–वर्ग व्यवस्था के कुचक्रों के मध्य एक भीषण जातिय संघर्ष की बानगी प्रस्तुत करती है तो वहीं दूसरी ओर स्त्री और दलितों के हितों की मांग करती है। पंकज सुबीर की 'महुआ घटवारिन' और पंकज मित्र की 'कफ़न रीमिक्स' आदि कहानियां क्रमशः रेणु की 'तीसरी कसम' और प्रेमचंद की 'कफ़न' कहानी को इक्कीसवीं सदी के नए सामाजिक संदर्भों के आलोक में कहानी की पुरनर्रचना करके उसकी सामाजिकता, सामयिकता को बढ़ाती हैं। शैलजा भी इन्हीं बदलावों को ध्यान में रखकर कहती हैः "कुल मिलाकर समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ को अत्यंत गहरे धरातल पर व्यक्त करती हुई मनुष्य की अस्मिता के संकट के साथ व्यापक स्तर पर मूल्य संकट के घेरों से जूझती है।"[3]

किसी रचना और विचारधारा की दुनिया में कथा–कहानी का जो शास्त्र है उसका गहरा संबंध कहानी कहने, कथा के चुनने और कहने के समय से है। भूमंडलीकरण के समय की हिंदी कहानी पर विचार करते हुए यह बात साफ होती है कि इस दौर के कहानीकारों ने समकालीन समय, समाज परिवर्तन एवं विकास की प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए कहानी की दुनिया रची है इसीलिए इस दौर के कहानियों की जो दुनिया है, वहाँ कहानी के रचने अथवा सर्जनात्मकता की ये प्रक्रियाएँ इतनी जटिल और विविधतापूर्ण हैं कि उन पर विचार एवं उनका आकलन करना अत्यंत दुःसाध्यपूर्ण कार्य है। हिंदी कहानी, सिर्फ वस्तु और कला की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यहाँ इतिहास, सामाजिक विमर्श वैचारिकताओं की टकराहट, राजनीतिक संघर्ष, अनुभव आदि की ऐसी अनेक निर्मितियाँ दिखलाई पड़ती है जिसे मात्र पारंपरिक तरीके से नहीं समझा जा सकता है। उसे समझने के लिए इतिहास, समाजशास्त्र राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान आदि को समझने के साथ–साथ मानव स्वभाव के सर्जनात्मक पक्ष की समझ होनी भी जरूरी है। कारण इस समय की हिंदी कहानी की दुनिया में इतनी तरह की विविधताएँ हैं कि पाठकों का जब उनसे सामना होता है, तब वे तय नहीं कर पाते हैं कि वे कोई कहानी पढ़ रहे हैं अथवा सामाजिक संघर्षों में स्त्री और दलित जीवन का इतिहास देख रहे हैं, सामाजिक–राजनीतिक परिवर्त्तन एवं विकास की बारीकियों से गुजर रहे हैं या अर्थशास्त्र अथवा बाजारवाद के व्यवहारिक पक्ष की जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार भूमण्डलीकरण की कई ऐसी प्रक्रियाएँ है, जो इधर के नये कहानीकारों में साफ–साफ दिखलाई

देती है। यहाँ इन्टरनेट की दुनिया से लेकर एक सुविधाभोगी भौतिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नव–निर्मित उत्पादनों की भरमार है जिसमें आज के जीवन के यथार्थ को एक नये ढंग से रचा जा रहा है और मनुष्य है कि उसके मायाजाल से निकल ही नहीं पा रहा है। उदाहरण के लिए, पंकज बिष्ट ने 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', उदय प्रकाश ने 'तिरिछ', संजीव ने 'अपराध', चित्रा मुद्गल ने 'लकड़बग्घा', प्रेमकुमार मणि ने 'खोज', ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'सलाम', अखिलेश ने 'चिट्ठी', संजय खाती ने 'पिंटी का साबून' आदि कहानियों में समकालीन समय, समाज, राजनीति के यथार्थ तथा बाजारवाद के मायाजाल में फंसे मनुष्य एवं उसके अंतर्मन की बेचौनी, भय, अंतर्द्वद्व आदि का का प्रभावशाली चित्रण अपनी कहानियों में किया है। खास बात यह है कि परिवर्तन और नये विकास की इन प्रक्रियाओं को 90 के बाद बाद से लेकर आज तक के कहानीकारों ने एक नयी भाषा और कलात्मक यथार्थ के साथ गढ़ा है। अनिल यादव की चर्चित कहानी 'दंगा भेजियो मौला' के शिल्प और भाषा के सन्दर्भ में संजीव की यह टिप्पणी देखने योग्य है– "कहानी अपनी पूरी संरचना में सुसंगत है। यहाँ कुछ भी अलग नहीं छिटकता न दृश्य, न ब्यौरा, न भाषा, न कथा–युक्तियाँ। इनमें से कोई अपने लिए नहीं है, सभी एक–दूसरे के लिए हैं।"[4] 90 के बाद हिंदी कहानियों में जिन विषयों को केन्द्र में रखकर कहानियाँ लिखी गई है, इनमें कृषि संबंधी संघर्ष, स्त्री समाज, दलित समाज, आदिवासी एवं हाशिये के अन्य समाज, सांप्रदायिकता एवं अल्पसंख्यक समाज, भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद के कारण उभरता नया भारतीय समाज आदि प्रमुख हैं।

सन् 1992 ई. में हुए बाबरी मस्जिद के ध्वंस और इसके बाद उपजे सांप्रदायिक दंगों का गहरा असर रचना और विचार की दुनिया पर भी पड़ा और हिंदी कहानी में स्वयं प्रकाश, पंकज बिष्ट, उदय प्रकाश, शिवमूर्ति, गीतांजलि श्री, अवधेश प्रीत, हृषिकेष सुलभ आदि ने सांप्रदायिकता से जुड़ी विचारशील कहानियां लिखी जिनमें स्वयं प्रकाश की 'पार्टीशन' कहानी, उदय प्रकाश की 'और अंत में प्रार्थना' कहानी, शिवमूर्ति की 'त्रिशूल' कहानी और अवधेश प्रीत की 'बशारत मंजिल' कहानी जैसी कहानियां चर्चित हैं। दंगों के कारण उपजे जटिल राजनीतिक बोध और भय के माहौल को रमेश उपाध्याय की 'देवी सिंह कौन' रमेश बतरा की 'कत्ल की रात', स्वयं प्रकाश की 'सूरज कब निकालेगा', नमिता सिंह की 'काले अन्धेरे की मौत', असगर वजाहत की 'मछलियाँ', उदय प्रकाश की 'टेपचू', अरुण प्रकाश की 'मैया एक्सप्रेस', धीरेन्द्र आस्थाना की 'लोग हाशिये पर', विजयकान्त की 'बलैत माखून भगत', राजेश जोशी की 'सोमवार' जैसी कहानियों का उल्लेख महत्त्वपूर्ण कहानियों के रूप में किया जा सकता है। शम्भु गुप्त ने लिखा है, "दुनिया भर का समकालीन साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, नव–सामंतवाद एवं नव–उपनिवेशवाद पिछली कुछ दशाब्दियों से अपनी विभिन्न राजनितिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक ऐजेंसियों के द्वारा श्रमशील तबके की इसी आत्म–चेतना, मूल्य–निष्ठा एवं विवेक–बुद्धि को ठिकाने लगाने पर तुला है।"[5]

सन् 1990 के बाद भारत में शुरु हुए आर्थिक उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के कारण किसानों एवं मजदूरों की जिंदगी पर गहरा असर पड़ा और हिंदी में हाशिये के किसानों और मजदूरों को लेकर विजेंद्र अनिल ने 'विस्फोट', विजयकान्त ने 'बीच का समर', 'मरीधार', सुरेश कांटक ने 'एक बनिहार का आत्मनिवेदन', मधुकर सिंह ने 'मेरे गाँव के लोग', अंजना रजन दाग ने 'मुआवजा', मदन मोहन ने 'बच्चे बड़े हो रहे हैं', मिथिलेश्वर ने 'मेघना का निर्णय', संजीव ने 'तिरबेनी का तड़बन्ना', रामस्वरूप अणखी ने 'जोहड़ बस्ती', हृदयेश ने 'मजदूर', मेहनरून्निसा परवेज ने 'आतंक भरा सुख', सेवक राम यात्री ने 'अंधेरे की सैलाब', विजेंद्र भाटिया ने 'शहादतनामा', शिवमूर्ति ने 'तिरिया चरितर', हृषिकेश सुलभ ने 'पथरकट', उदय प्रकाश ने 'टेपचू', हरी भटनागर ने 'घर कहाँ है', संजय ने 'कामरेड का कोट', बलराम ने 'कामरेड का सपना', प्रेमपाल शर्मा ने 'सूबेदार', विक्रम जनबंधु ने 'प्रहरी', अवजेश प्रीत ने 'नृशंस' जैसी कहानियाँ लिखी। किसानों और मजदूरों का यह संघर्ष इसलिए भी जरूरी है कि वे पुरानी सामंती व्यवस्था से मुक्त हो सकें और नई व्यवस्था में अपने लिए जगह बना सकें! परन्तु क्या यह संभव है? शायद नहीं; क्योंकि नई आर्थिक व्यवस्था के कारण ग्रामीण जीवन पर भी बाजारवाद का इतना गहरा असर होता जा रहा है कि किसान और मजदूर उससे त्रस्त है परंतु स्थिति ऐसी है कि कुछ भी करने की हालत में वे नहीं है। फिर क्या करें? प्रतिरोध का तरीका क्या हो? इन स्थितियों की तरफ कैलाश वनवासी की कहानी 'बाजार में रामधन' संकेत करती है, जब रामधन नामक किसान अपने बैलों को बेचने से इंकार कर देता है इसलिए नहीं कि कम दाम मिल रहे हैं, बल्कि इसलिए

वह मन से अपने बैलों को बेचना ही नहीं चाह रहा है। उसे खेती और किसानी से प्यार है। बैलों में उसका मन रमता है। उसके बैल पूछ रहे हैं– 'मान लो अगर दाऊ या महाराज तुम्हें चार हजार दे देते तो तुम क्या हमें बेच दिए होते?' रामधन ने जवाब दिया, 'शायद नहीं। फिर भी नहीं बेचता उनके हाथ तुमको।' इसके अतिरिक्त मोहम्मद आरिफ की 'बच्चों का खेल' , मनोज कुमार पांडे की 'और हसों लड़की', पंकज मित्र की 'पप्पू काँट लव सा...', राजीव कुमार की 'तेज़ाब', पंकज सुबीर की 'चौथमल मस्साब और पूस की रात' आदि कहानियों में तेजी से बदलते ग्रामीण परिवेश की साफ और स्पष्ट झलक देखी जा सकती है, जो इक्कीसवीं सदी की अन्य कहानियों में भी परिलक्षित होता है।

सन् 1990 में मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू होने के बाद दलित लेखकों ने भारतीय समाज को दलितों की निगाह से देखना और अपने अनुभवों का बयान करना शुरु किया। इन अनुभवों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था, रचनाओं में भारतीय समाज की सबसे मजबूत व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था का प्रतिरोध और वर्ण–व्यवस्था को मजबूत करने वाले दो कारक 'ज्ञान' एवं 'सत्ता'के केंद्र में खड़े 'ब्राह्मणवाद' और 'सामंतवाद' के दमन और शोषण के खिलाफ दलित समाज में प्रतिरोध की चेतना विकसित करना। 'ज्ञान' के संदर्भ में ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'पच्चीस चौक डेढ़ सौ' एवं 'सत्ता' तथा संस्कृति के संदर्भ में 'सलाम' जैसी कहानियों का आना दलित कहानी की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है जिसने हिन्दी की दलित कहानी की दिशा तय करने में निर्णायक भूमिका निभाई। ओमप्रकाश वाल्मीकि के अलावा जिन अन्य कहानीकारों ने दलित कहानी को कहानी के केंद्र में लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं उनमें मोहनदास नैमिशराय की 'आवाजें', 'अपना गाँव', जय प्रकाश कदम की 'नो बार', सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया', दयानन्द बटोही की 'सुरंग', एस.आर. हरनोट की 'जीनकाठी', कुसुम वियोगी की 'अंतिम बयान', श्यौराज सिंह बेचैन की 'शोध प्रबंध', सूरजपाल चौहान की 'अहिल्या', प्रहलाद चन्द दास की 'लटकी हुई शर्त', शत्रुघ्न कुमार की 'हिस्से की रोटी', बिपिन बिहारी की 'बिवाइयाँ', रत्न कुमार सांभरिया की 'फुलवा', शिवमूर्ति की 'कसाईबाड़ा', 'कुच्ची का कानून' आदि प्रमुख हैं। इन कहानियों में जहाँ एक ओर भारतीय समाज में इस वंचित वर्ग का जीवन संघर्ष उभर कर सामने आता है वहीं दूसरी ओर इन कहानियों में भारतीय समाज मुख्यतः ग्रामीण समाज की अनेक परतें भी दिखाई पड़ती हैं। वंचितों को आधार बनाकर लिखी गई इन कहानियों के संदर्भ में वैभव सिंह अपनी पुस्तक 'कहानीः विचारधारा और यथार्थ' में लिखते हैंः "इस प्रकार कहानियां करुणा के मूल्य की स्थापना के लिए समाज में करुणा के व्यापक अभाव के बारे में हमें सजग करती हैं। वे दिखाती हैं कि करुणा, दया या प्रेम के मूल्य अब जातिवादी मान्यताओं को अपनाने से नहीं बल्कि शिक्षा, जागृति और प्रतिरोध के बल पर नए ढंग से स्थापित किए जा सकते हैं। हिंदी में कथावस्तु व कथा–दृष्टि का यह नया भारतीयकरण है जिसमें कथाएं भारतीय गांवों के साथ नया संबंध स्थापित कर रही हैं।"[6] इन कहानियों में लेखकों ने दलित समाज के उत्पीड़न, संघर्ष और प्रतिरोध का यथार्थ चित्रण किया है। विनोद शाही इन्हीं नए उभरते हुए नायकों के लिए लिखते हैः "सामंतीय व्यवस्था में बिखराव की प्रक्रिया नौवीं शती के अस–पास आरम्भ हो जाती है। उसके नतीजे के तौर पर निम्न या सामान्य वर्गों के भीतर से ही ऐसे लोग उभरते नज़र आने लगते हैं, जो चरित–नायकों का विकल्प हो सकते हैं।"[7]

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में व्यक्ति के जीवन में तथा सोच में आये परिवर्तनों का जितना यथार्थ दिखलाई पड़ता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। वित्तीय बाजार के इस प्रभाव का समकालीन हिंदी के दो चर्चित कहानीकारों पंकज बिष्ट और उदय प्रकाश की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' एवं 'पाल गोमरा का स्कूटर' जैसी कहानियां भूमंडलीकरण के वित्तीय बाजार द्वारा निर्मित रिश्तों में समान खरीदने और फिर उसे ई.एम.आई. के जरिये एक निर्धारित अवधि तक चुकाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण करती है। खास बात यह है कि वित्तीय बाजार के जटिल यथार्थ का बयान करती ये दोनों कहानियां मानवीय जीवन और व्यवहार में संरचनात्मक स्तर पर आये बदलाव और आम आदमी के धीरे–धीरे टूटने एवं अलग–थलग पड़ने का जो चित्र उपस्थित करती है, वह आज की जिंदगी की सबसे बड़ी त्रासदी है। इनमें पंकज बिष्ट की कहानी का नायक 'बिशन' जहाँ विज्ञापन एवं उपभोक्तावादी बाजार के षड़्यंत्र और भय का शिकार होकर मृतप्राय है, वहां उदय प्रकाश का नायक 'पालगोमरा' स्कूटर न चला पाने के कारण अंतहीन जड़ता तथा पागलपन का शिकार है। स्पष्टतः यह दोनों कहानियां नयी आर्थिक व्यवस्था में आम आदमी के टूटने

एवं उसके लोगों से अलग–थलग पड़ने के यथार्थ को चित्रण करती हैं परंतु दोनों में मनुष्य के इस स्थिति तक आने का कारण एक ही है और वह है, बाजार द्वारा मनुष्य को उपभोक्तावादी समाज में तब्दील करना एवं उसे अपना हिस्सा बनाना है। परिवर्तन के इन्हीं पहलुओं की झलक हिंदी कहानियों में भी देखने को मिलती है।

निष्कर्ष

अतः कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन कहानियों की सामाजिक संतृप्तता का विवेकयुक्त, वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन का वह पैमाना है जिसके आलोक में कहानी के कथाध्ययन के साथ–साथ कहानियों में निहित सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं का सबसे सटीक अंकन किया जा सकता है। नई सदी की कहानियां समाज के प्रत्येक पक्ष का सूक्ष्म अंकन मूल्यांकन करते हुए चलती हैं और समाज के प्रत्येक हिस्से फिर चाहे वह हाशियेकृत समाज हो अथवा ग्रामीण या मुख्य धारा का, ग्रामीण समाज हो या नगर समाज हो, मजदूर वर्ग हो अथवा नौकरीपेशा, किसान हो या कंपनी में कार्य करने वाली नई युवा पीढ़ी, स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बच्चे आदि सभी कहानी के केंद्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। इस प्रकार इस सदी की कहानियां समाज के विविध रूपों के स्याह–सफ़ेद सभी रंगों को बेबाकी से उघाड़कर सामने लाती हैं।

संदर्भ सूची

1. उपाध्याय, रमेश. (1999). *कहानी की समाजशास्त्रीय समीक्षा,* नई दिल्ली, नमन प्रकाशन. पृ. सं. 02।
2. कमलेश्वर.(2015). *नई कहानी की भूमिका,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 22।
3. शैलजा.(2017). *समकालीन हिंदी कहानी : बदलते जीवन संघर्ष,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 70।
4. कुमार, संजीव. (2019). *हिंदी कहानी की इक्कीसवीं सदी : पाठ के पास पाठ से परे,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 38।
5. गुप्त, शंभु. (2017). *कहानी यथार्थवाद से मुक्ति,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 79।
6. सिंह, वैभव. (2020). *कहानी : विचारधारा और यथार्थ,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 120।
7. शाही, विनोद. (2020). *कथा की सैद्धांतिकी,* पंचकूला, आधार प्रकाशन. पृ. सं. 120।

****